SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

dchj d vkè;kfRed fpru dh o|kfjd :i j[kk

çnhi dekj flg] (Ph.D.), हिंदी विभाग,
पी. सी. विज्ञान महाविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
çnhi dekj flg] (Ph.D.), हिंदी विभाग,
पी. सी. विज्ञान महाविद्यालय,
छपरा, बिहार, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 24/11/2022
Revised on : -----
Accepted on : 01/12/2022
Plagiarism : 00% on 24/11/2022

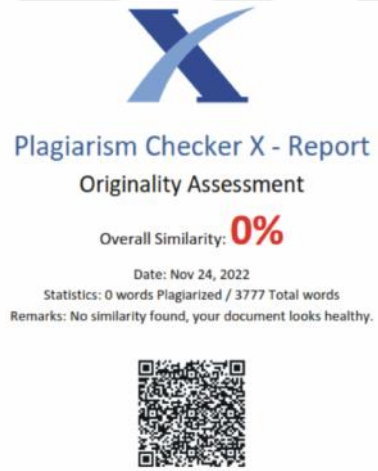

'kks/k lkj

भारतीय दर्शन की लोक पद्धति में कबीर का चिंतन अपनी मौलिक विचारधारा और अप्रतिम उक्तियों के लिए सदैव ही जिज्ञासा और प्रीति का विषय रहा है। कबीर ने सामान्य जन मानस के लिए एक ऐसे दर्शन का विकास किया जो सर्व सुलभ और वैदिक पांडित्य से बोझिल विचारकों के लिए अत्यंत ही दुर्लभ था। कबीर के दर्शन में भारतीय समाज की जो रूपरेखा हमें प्राप्त होती है और उस भारतीय समाज की रूपरेखा में जो विषमताएं घूम रही हैं, उन समस्त विषमताओं का सीधा समाधान कबीर में आपको मिल जाएगा। कबीर जिस शक्ति की आराधना करते हैं, जिस ब्रह्म का ध्यान करते हैं, उनका वह ब्रह्म लोक से निरपेक्ष नहीं है। उनका वह ब्रह्म लोक की तमाम चिंताओं का हरण करता हुआ, लोक की समस्त वासनाओं को नष्ट करता हुआ, मनुष्य मात्र के हृदय में रस बनकर व्याप्त है। कोई भी मनुष्य अपने जीवन को एक साधनात्मक विशेष संस्कार देकर तथा जीवन को एक व्यवस्था देकर, उस ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। कबीर ने अपने दर्शन में उन गूढ़ तथ्यों को एवं उन गहरे रहस्यों को प्रकट किया जो रहस्य अब तक वैदिक संस्कृत में और साहित्य में केवल एक विशेष समुदाय के लिए ग्राह्य थे, जो सर्वसामान्य के लिए सुलभ नहीं थे। जो सत्य अब तक शूद्रों के लिए अछूता था, उस सत्य को कबीर ने उनके लिए भी प्रकट कर दिया। कबीर ने अपने दर्शन को, अपनी बानियों में और अपने उपदेशों में, अत्यन्त सरल और सहज रूप में अभिव्यक्त किया है। कबीर का दार्शनिक चिंतन दो रूपों में हमारे सामने आता है, एक उनका सामाजिक पक्ष है, दूसरा उनके दर्शन का आध्यात्मिक और यौगिक रहस्यवादी पक्ष है। कबीर ने इन दोनों पक्षों पर अपने विचारों को इतने व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया है कि कोई भी सामान्य व्यक्ति उनका अध्ययन करेगा तो उसका फल और उसका श्रेय ब्रह्मानुभव के रूप में उसे अवश्य प्राप्त होगा। कबीर की विचारधारा में व्यावहारिक

दृष्टि से समाज में जब तक समरसता व्याप्त नहीं होगी या कहें कि व्यक्तित्व में जब तक समरसता व्याप्त नहीं होगी तब तक किसी भी तत्त्व का साक्षात्कार नहीं हो सकता, जब तक हम उस तत्त्व की अनुभूति के लिये एक ठीक व्यवस्था अपने हृदय में स्थापित नहीं करेंगे, जिसमें कि समस्त जगत से संबंधित प्रेम और सत्य का बोध ना हो तब तक उस परम सत्य का साक्षात्कार हमें कभी भी, किसी भी काल में संभव नहीं हो सकता है। यह कबीर के दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है, जो अन्य दर्शन मे प्रायः बहुत ही कम देखने को मिलेगी। भगवान बुद्ध के बाद इस दर्शन को अभिव्यक्त करने का श्रेय केवल कबीर को जाता है। भगवान बुद्ध के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा पाने वाले विचारकों में कबीरदास ही हैं जो उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक पूरी तरह से समान रूप से समादृत हैं, जिन्हें हर दार्शनिक हर विद्वान उतना ही सम्मान देता है जितना अपने पूर्ववर्ती मीमांसकों और अपनी पूर्ववर्ती धारणाओं का वह सम्मान करता है।

e|[; 'kCn

txr] v}\r] dchj] ;kfxd] n'ku] Kku·

---

ifjp;

कबीर के अपने समय मध्यकाल से लेकर आधुनिक समय तक, अब तक कहीं न कहीं हम आज भी कबीर को अपने आसपास खड़ा हुआ देख ही लेते हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि एक साधारण आदमी जिसके पास भौतिक संसाधन और भोग भूमि बिल्कुल नगण्य हैं, कह सकते हैं कि है ही नहीं, जो केवल जुलाहे का काम करके अपनी जीविका चला रहा है और जिसके पास गर्व करने के लिए कुछ भी नहीं है वह आदमी आज भी एक लंबे समय से हमारे बीच हमारी जिज्ञासा और साहित्यिक मीमांसा का केंद्र बना हुआ है। कुछ बात तो है कबीर में जो सामान्य मनुष्यों से हटकर है, और वह बात ही ऐसी है जिसकी मैं प्रस्तावना कह रहा हूँ। कबीर के सन्दर्भ में यह प्रस्तावना वह बड़ी विलक्षण और प्रीतिकर है। कबीर अपने समय के बहुत उच्च आध्यात्मिक चिंतक और बहुत ही सुलझे हुए व्यक्तित्व के व्यक्ति थे। भारतीय धर्म साधना में कबीर का स्थान बहुत ही अन्यतम है। उनकी सोच को, उनकी समझ को एक साधारण इंसान से लेकर एक बहुत ही बुद्धिमान इंसान तक सहज ही में समझ लेता है। कबीर की कविता में कबीर का चिंतन और उनका युगबोध दोनों ही युगपत रूप से हमें देखने को मिलते हैं। ''जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे उससे कुछ ही वर्ष पूर्व भारत वर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म मत और समाज व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उनकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति व्यवस्था को पहली बार जबरदस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत से पंडितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म मत को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे।''[1]

कबीर समाज के उन्हीं चिंतकों में से एक थे जो इस धर्म के जटिल मार्ग के बीच में से एक सरल मार्ग की खोज कर रहे थे जो कि जनसामान्य के लिए सुगम और सहज हो, जो सामान्य रूप से हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए ही अर्थपूर्ण और श्रेयसकर हो। कबीर के आध्यात्मिक चिंतन की सहजता, सरलता और उसकी बेधन क्षमता जो समूची मानवता के चरित्र और आत्मिक विकास के लिए बड़ी ही अर्थपूर्ण है जिसे हम सरल से सरल भाषा में समझ सकते हैं, वही एक बात कबीर को वर्तमान में भी हमारे बीच में जिंदा रखे हुए है। कबीर के आध्यात्मिक शोध के विषय में जिज्ञासा, उनकी सरल सोच को अपने जीवन में उतारने की प्रतिबद्धता और कबीर के चिंतन के प्रति रुझान तथा कबीर की जीवन प्रणाली के प्रति आस्था ये सब बातें हैं जो आज के आम आदमी में व्यावहारिक दृष्टि से कम ही देखने को मिलती हैं। लेकिन वह सामान्य आदमी यह अच्छी तरह से जानता है कि कबीर जो बात कह रहे हैं वह मेरे लिए और समाज के लिए वास्तव में ही हितकारी है और हम सब को निरपेक्ष रूप से उसका पालन करना चाहिए। कबीर की वही चिंतन प्रणाली और उनकी साफगोई की बातें हमारे बीच में उनके व्यक्तित्व के प्रति गहन आकर्षण का केंद्र बनी हैं। ''वे सिर से पैर तक मस्त मौला थे। मस्त जो पुराने कृत्यों का हिसाब नहीं रखता,

वर्तमान कर्मों को सर्वस्व नहीं समझता और भविष्य में सब कुछ झाड़. फटकार निकल जाता है। जो दुनियादारी, किए कराए का लेखा–जोखा दुरुस्त रखता है वह मस्त नहीं हो सकता। जो अतीत का चिट्ठा खोले रहता है वह भविष्य का क्रांतिदर्शी नहीं बन सकता। जो इश्क का मतवाला है, वह दुनिया के माप जोख से अपनी सफलता का हिसाब नहीं करता। कबीर जैसे फक्कड़ को दुनिया की होशियारी से क्या वास्ताव, ये प्रेम के मतवाले थे मगर अपने को उन दीवानों में नहीं गिनते थे जो माशूक के लिए सर पर कफ़न बांधे फिरते हैं, जो बेकरारी की तड़पन में इश्क का चरम कर्म फल पाने का भान करते हैं, क्योंकि बेकरारी उस वियोग में होती है जिसमें प्रिय दूर हो। उसे पाना कठिन हो। पर जहाँ प्यारे से एक क्षण के लिए भी बिछोह नहीं, वहाँ तड़पन कैसी जो गगरी भरी है, उसमें छलकन, कहाँ जहाँ द्वैत भावना ही मिट गई हो उस अजब मस्ती में बेचनी कहाँ?''[2]

यही बातें हमें कबीर के विषय में सोचने को विवश करती हैं। कबीर की उस जाग्रत सोच का आज समाज में अनुपालन की दृष्टि से अभाव सा दिख रहा है, फिर भी कबीर की यही धार्मिक सोच मनुष्यों के बीच आज तक विचार का केंद्र बनी हुई है और यही विचार जैसे–जैसे समाज का धर्म बोध शून्य होता जाएगा। अपनी महत्तम स्थिति के साथ अपने प्रभाव में उत्तरोत्तर कथा और उपदेश प्रसंग से अत्यंत प्रभावी होता जाएगा। हम कबीर के उसी आध्यात्मिक आकर्षण और विचार को कबीर और उनके बाद की परम्परा में आश्चर्य के रूप में देखते हैं, जिसमें कबीर का दर्शन उनकी प्रतिक्रिया उनके प्रत्येक विचार, प्रत्येक पहलू और उनके प्रत्येक कर्म, उनके ज्ञान बोध से छन–छन कर हम तक आता रहा है। कबीर का जीवन एक साधारण आदमी का जीवन है जिसमें कोई शानो–शौकत और आवरण नहीं है। वह बिल्कुल सादा है, अनावृत है, कहीं कोई कुछ रहस्य छुपा हुआ नहीं है, कहीं कोई हेराफेरी नहीं है, सीधा सपाट कोरे कागज जैसा है और ऐसा व्यक्ति ही अध्यात्म की दुनियाँ में प्रवेश कर पाता है।'' वे मान और अपमान के स्तर से ऊपर उठ चुके थे। उन्हें द्रोह, विद्रोह, अशांति, वैमनस्य, प्रतिहिंसा की भावना से घृणा थी। वे शांतिप्रिय थे। अहिंसा और सरलता के वे समर्थक थे। करनी और कथनी में वे भेद नहीं मानते थे। लौकिक जीवन से ऊपर उठने की उनमें साध थी। वे प्रेमी, भक्त, साधक, योगी और विश्वासी थे। दुविधा से भी घृणा करते थे। भेष और वस्त्राचार तथा सत्य के नाम पर अनाचार देखकर वे जल उठते थे। समदृष्टि और सहज को जीवन में वे कार्यान्वित करना चाहते थे। उदारता, विश्वबंधुत्व, दीनता, धैर्य, संतोष, सहनशीलता और क्षमा उनकी चरित्र की विशेषताएँ थीं। ''सत्य–प्रियता के कारण उन्हें जीवन में विरोधों के अनेक तूफानों का सामना करना पड़ा। कबीर स्वतंत्र विचार के व्यक्ति थे उसमें प्रतिभा की मौलिकता थी। उनकी वाणी में बल और हृदय में साहस था। अप्रिय सत्य कहने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं था। मुरौव्वत और रियायत की भावना उनमें स्थान नहीं पा सकी थी।''[3]

कबीर के पास जो अपना दर्शन है वह दर्शन उनकी खुद की साधना से आया है, उन्होंने किसी से उधार नहीं लिया है। कबीर की सोच पूर्णतः तरह धर्म और दर्शन के साधना परक प्रयोगवादी चिंतन पर आधारित है। उनके दर्शन में जीवन के उन तमाम पहलुओं को लिया गया है जो हमारे व्यावहारिक जीवन के इर्द–गिर्द जुड़े हुए हैं। उनका आध्यात्मिक जीवन दर्शन कुछ विशेष स्तरों पर हमारे सामने आता है और यही स्तर उनके व्यक्तित्व में समाहित हो कर उनको अत्यंत प्रामाणिक रूप प्रदान करता है और जीवन के द्वन्द्व में हमें भी प्रामाणिक बनने की सीख देता है। कबीर का यह स्तर उनके ज्ञान का स्तर है, उनके चिंतन की दुर्गम और सुगम प्रणाली का स्तर है। उनके आध्यात्मिक जीवन के यह विशेष स्तर समाधि के विशिष्ट सोपान हैं, जो उनके बीजक में उनके गीतों में हमें देखने को मिल जाते हैं। कबीर का पूरा जीवन ही एक आध्यात्मिक क्रांति का सूचक है, जिसने भारत के चिंतन को पाखंड और धार्मिक पिछड़ेपन से मुक्त किया है। यह पाखंड समीचीन संप्रदाय और धर्मों में जिनका आधार चेतना का उन्नयन है उसमें एक घुन की तरह कार्य करता है जो उनकी जड़ों को अंदर तक खोखला कर देता है और धर्म के सूक्ष्म विज्ञेय तत्त्व को आंखों से ओझल कर उसे मार देता है। कालांतर में ये सम्प्रदाय उसी घुनाक्षर न्याय को पकड़ कर समाज को अंध श्रद्धा के पीछे ले चलने का काम करते हैं। कबीर ने भारतीय परिवेश के इसी तथाकथित धार्मिक षड्यंत्र और छद्म वेश धारी पाखंड पर घनघोर प्रहार किया है, जिसकी गूंज हम आज भी सुन रहे हैं और यही गूंज युगों तक सुनी जा सकेगी। कबीर के आध्यात्मिक दर्शन की भाव भूमि धर्म की विकृत मानसिकता को सुधारने की एक समर्थ कोशिश पर आधारित है। जिन लोगों ने अपने मानसिक प्रलोभन को साधने

के लिए या शासक वृत्ति को मजबूत करने के लिए धर्म की मनः व्याख्या की उसी जड़वादी व्याख्या के विरुद्ध कबीर की धार्मिक चेतना का मुखर स्वर उनकी कविता में मूल विषय रहा है। उनके आध्यात्मिक दर्शन का पहला स्वर है सामाजिक समरसता और सुधारात्मक सोच। कबीर ने स्पष्ट कहा है कि धर्म को अपने जड़वादी सोच से मुक्त करो और उसको अपने व्यक्तिगत आरोपों से भी मत बद्ध करो, क्योंकि उनके समय में मुस्लिम संस्कृति और शरिया कानून पूरी तरह से भारतीय परिवेश के आसपास जड़ जमा चुका था, इस कारण भारत के धर्म वेत्ता, जिनमें पंडितों की संख्या अधिक थी उनमें और मुस्लिम जगत के स्वयंभू खलीफाओं में धर्म की कलह निरंतर चलती रहती थी, जो परस्पर धार्मिक मूर्खता पर टिकी हुई थी। यही मूर्खता यदा–कदा धार्मिक संघर्ष का कारण भी बन जाती थी। कबीर का पहला प्रहार दोनों संप्रदायों की इस मूढ़ता पर हुआ। वह कहते हैं ''संतो देखो जग बौराना। हिंदू कहें मोहि राम पियारा, तुर्क कहें रहिमना। आपस में दोऊ लड़े मरत हैं, मरम न काहू जाना। कहे कबीर सुनो भाई संतो, हैं सब भरम भुलाना, कैसे कहो कहा नहीं मानत, सहजे सहज समाना।''[4]

कबीर ने कहा भाई परमात्मा की राह बड़ी सरल है, उसमें जटिलता नहीं है। यह सब पंडित मुल्ले भटके हुए हैं, भ्रम में पड़े हुए हैं, अविद्या के शिकार हैं। आपसी श्रेष्ठता के दम्भ में पड़कर लड़ रहे हैं। यह कैसी धर्म मीमांसा है, जिसको लेकर मूढ़ समाज चल रहा है। कबीर के इस उद्घोष में समाज की जो रूढ़ धर्म की पट्टी को आँखों पर बाँधे हुए था उनका विरोधी बना दिया, परंतु कबीर एक जागृत मशाल थे। उन तक ऐसे धर्मांध अंधेरे न पहुँच सके। यही उनकी सबसे बड़ी खासियत थी। एक जगह उन्होंने कहा है। ''जो तू बाम्हन बामणी जाया। आन बाट काहे नहीं आया।''[5] कबीर ने पंडितों के धार्मिक विश्वासों पर विकट प्रहार किया। ''पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़।''[6] मुसलमानों की मूढ़ आस्था पर भी कठोर वज्र जैसा आघात किया। ''कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाय, ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदा।''[7] जहाँ इस प्रकार की अंधता को तोड़ने वाली बातें चल रही थी वहाँ पंडित मुल्ला, पुजारी, काजी कौन कबीर को चाहेगा कि हमारे समाज में रहें। अतः उनके ही समय में इस प्रकार की धर्मांध शक्तियों ने कबीर का घोर विरोध किया।

कबीर के दर्शन में जहाँ समाज की विषमता के प्रति एक सुधारवादी घोर आक्रोश है, वहीं उनके दर्शन में एक उच्च आध्यात्मिकता से भरा हुआ प्रबल प्रेम का निवेदन भी है। यह निवेदन उनकी साधना पद्धति के फल स्वरूप उत्पन्न हुआ है। कबीर का यह प्रेम कोई साधारण स्तर का प्रेम नहीं है, जो संसार के किसी विषयी मनुष्य के विरह के समानांतर हो। संसारी मनुष्य का प्रेम पार्थिव है,जबकि कबीर के हृदय में उत्पन्न प्रेम धारा चिन्मय है, यह प्रेम केवल शुद्ध परमात्मा के लिए ही हृदय में उठता है।यह प्रेम परमात्मा को अपने प्रियतम के रूप में देखता है और निरंतर प्रतीक्षारत रहता है कि कब परमात्मा से मिलन की बेला आए और मैं उससे सदा के लिए एकाकार हो जाऊँ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने ग्रंथ 'कबीर' में इसका विवेचन करते हुए कहते हैं। ''कबीरदास ने इस प्रेम की लीला को एक बहुत ही वीर्यवती साधना के रूप में देखा है। एक बार जिसे भगवान की रहस्य केलि की पुकार सुनाई देगी जाती है वह व्याकुल हो उठता है, प्रिय मिलन के लिए उसकी तड़पन संसार के किसी और विरह व्यापार से तुलनीय नहीं हो सकती। चकई का विरह प्रसिद्ध है, पर वह भी तो रात की समाप्ति के बाद प्रिया के साथ आसानी से मिल जाती है। राम का विरह इतना आसान नहीं है। एक बार जो इस विरह की चपेट में आ गया वह कुछ ऐसा बेहाल हो जाता है कि कहकर प्रकाश करना कठिन है। उसे न दिन में सुख मिलता है ना रात में, न सपने में, न जागरण में, न धूप में, न छाँह में। राम विरह का मारा भक्त हर एक साधक से पूछता रहता है कि वह कहाँ है, उसका प्रियतम किधर है, उसके पास जाने का रास्ता क्या है। वह ठीक उसी विरह में ऊबी विरहणी के समान होता है जो हर एक राहगीर से पूछती है कि उसके प्रियतम कब आएंगे।''[8] इस भाव की अभिव्यक्ति कबीर ने अपनी साखी में कुछ इस प्रकार की हैः

''चकवी बिछुरी रैणि की आई मिली परभाति।
जे जन बिछुरे राम से,ते दिन मिले न राति।।
बासरि सुख न रैणि सुख, ना सुख सपने माँहिं।
कबीर बिछुट्या राम सूँना सुख धूप न छाँहि।।

बिरहिन ऊभी पंथसिरि पंथी पूछै धाइ।
एक शब्द कहि पीव का कब रे मिलेंगे आइ।।''[9]

कबीर के दर्शन में अध्यात्म के तीन रूप हमें एक साथ देखने को मिलते हैं। एक रूप उनका समाज सुधारक रूप है, एक विरही का रूप है और एक रूप रहस्यवादी साधक का है। यह रहस्यमय रूप उनका सबसे अंत में सामने आता है, जब वो अपनी बातों में कुछ रहस्यमयी तत्त्व समाविष्ट कर लेते हैं और वे रहस्यमयी तत्त्व ऐसे हैं जिनका समाधान काशी के पंडितों के पास भी नहीं था। कबीर ने कुछ बातें इतनी वेद विरूद्ध की हैं जिनको समझ पाना सामान्य बुद्धि के वश की बात नहीं है। उनका रहस्यवाद वस्तुतः साधना से उत्पन्न हुआ है। उसमें रस है, साधन है, समाधान है और सिद्धि भी है। कबीर जब कहते हैंः

।।रस गगन गुफा में अजर झरै।।
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै तब ध्यान धरै।
बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहि चढि हंसा केलि करै।
बिन चंदा उजियारै दरसे, जहँ–तहँ हंसा नजर परै।।
दसवें द्वारें तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल विकट नहिं आवै, काम–क्रोध–मद लोभ जरै।।
जुगन जुगन की तृषा बुझानी, कर्म–भर्म–अथ–व्याधि टरै।
कहै कबीर सुनो भई साधो, अमर होय कबहूँ न मरै।।''[10]

यह अनुभूति और अनुभव काशी के पंडित जन के लिए बिल्कुल नया था, वे समझ ही न सके कि कबीर क्या कहना चाह रहे हैं। यह अनुभूति वेद के ऋषि को भी हुई है, लेकिन ऋषि ने इसको अपने सूक्तों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। सत्य की यही अनुभूति देशकाल के सापेक्ष अलग–अलग साधकों को होती रहती है। कबीर भी उन साधकों में एक साधक हैं, जब वे कहते हैंः ''संतौं भाई आई ग्यॉन की आँधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बाँधी हिति चित्त की द्वै थूँनी गिराँनी, मोह बलिण्डा टूटा। त्रिस्नाँ छाँनि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भाण्डा फूटा/जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणी। कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी /आँधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनाँ। कहै कबीर भाँन के प्रगटै, उदित भया तम खीनाँ।।[11] तो आप समझि, वे अपना अनुभव ही कह रहे हैं जो पूरी तरह शत–प्रतिशत सही है इसलिए उनके अनुभव और बातों में साधको को आज भी अपने योग्य समाधान मिल जाता है तथा विशेष रस की अनुभूति होती है। यह कबीर का यौगिक और साधनात्मक रहस्यवाद है जो उनकी साधना से तपःपूत अन्तःकरण का फल है। कबीर के इस रहस्यवाद में उनकी उलटबाँसी ने भी प्रवेश कर लिया है, जो तार्किक लोगों के लिए एक प्रकार की बेबूझ पहेली हैं। ''एक अचम्भा देखा रे भाई, ठाड़ा सिंह चरावै गाई। पहले पूत पीछे भई माई, चेला के गुरु लागै पाई/जल की मछली तरूवर व्याई, पकड़ि बिलाई मुर्गा खाई/बैलहि डारि गूनि घर आई, कुत्ता कूलै गई विलाई/तलि करि साषा ऊपरि करि मूल। बहुत भांति जड़ लागे फूल। कहै कबीर या पद को बूझै। ताकूँ तीन्यू त्रिभुवन सूझै।।''[12]

कबीर ने अपनी उलटबाँसी में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है वे बहुत अर्थ से भरे हुए और अत्यंत ही सार गर्भित प्रतीक हैं। कबीर की यह उलटबाँसी मनुष्य शरीर के भीतर ही एक पूरा प्रतीकात्मक प्रयोग है, जिसका साहित्य में कम ही साधकों ने प्रयोग किया है। एक जगह कबीर कहते हैं। ''देखि–देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझें बिरला कोई, धरती उलटि अकासै जाय, चिउंटी के मुख हस्ति समाय, बिना पवन सो पर्वत उड़े,जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़े, सूखे–सरवर उठे हिलोरा, बिनु–जल चकवा करतकिलोरा।।''[13] कबीर साधकों को अवधूत की संज्ञा देते हैं और उनके समक्ष एक प्रश्न रखते हैं।

''अवधू ऐसा ग्यान विचारं।
भेरै चढ़ै सु अधधर डूबै, निराधार भए पार।।
अधर चलै सु नगरि पहूंतै, बाट चलै ते लूटे।

एक जेबड़ी सब लपटाने, के बांधे के छूटे।।
मंदिर पैसि चहूं दिसि भींजे, बाहरि रहै ते सूखा।
सिर मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूखा।।
बिन नैनन के सब जग देखै, लोचन अचते अंधा।
कहै कबीर कछु समझि परी है, यह जग देख्या धंधा।।''[14]

कबीर के उलटबाँसी चिंतन को उक्त तथ्य के संदर्भ में आचार्य रजनीश ने अपनी एक पुस्तक के प्रवचन में कुछ इस प्रकार कहा है। ''तुम जैसे भी हो, ठीक उससे उलटा होना ही मार्ग है। जिस दिशा में तुम चल रहे हो, उससे उलटा चल सकोगे तो पहुंचोगे। गंगा बहती है सागर की तरफ। मूल स्रोत पीछे छूट गया है।'' गंगोत्री पीछे छूट गई है। आगे तो दूरी ही दूरी होगी। गंगोत्री तक पहुंचने का यह मार्ग नहीं है। गंगा को उलटा लौटना पड़े। तुम्हारी चेतना की गंगा भी जब उलटी लौटेगी गंगोत्री की तरफ लौटेगी, मूल–स्रोत की तरफ, तभी तुम पहुंच पाओगे क्योंकि, जिसे खोया है, उसे मूल स्रोत में ही खोया है। जिसे खोया है, वह आगे नहीं है, उसे तुम कहीं पीछे छोड़ आये हो। इस बात को बहुत ठीक से विचार कर लेना। कबीर का यह सूत्र इसी तरफ इशारा है और कबीर कहते हैं, यह सबसे महत्त्वपूर्ण ज्ञान है जिसे साधु को सोच लेना है। जिसे तुम खोज रहे हो उसे पीछे छोड़ आये हो। कभी वह तुम्हारी संपदा थी, विस्मृत हो गई। कभी तुम उसके मालिक थे और अब तुम भटक गये हो। अस्तित्व का समस्त आनंद कभी तुम्हारा था। निर्दोषता तुम्हारी थी। तुम साधु ही पैदा हुए थे। सभी साधु की तरह पैदा होते हैं। साधुता स्वभाव है। असाधुता अर्जित की जाती है। असाधुता तुम्हारी कमाई है, जो तुमने सीखी है। अपनी होशियारी से तुम असाधु हुए हो, निर्दोषता में तुम साधु थे ही।

सभी बच्चे साधु की तरह पैदा होते हैं, ''परम साधु की भांति और संसार का जहर, शिक्षा–दीक्षा, संस्कार, भीड़, धीरे–धीरे उन्हें स्वभाव से हटा देती है। वे अपने केंद्र से वंचित हो जाते हैं फिर जीवन भर उसी केंद्र की तलाश चलती है, समाज के नियमों के अनुसार और यही उपद्रव है। समाज के नियमों ने ही तुम्हें केंद्र से च्युत किया। उन्हीं नियमों को मान कर तुम खोज करते हो आनंद की। तुम और दूर होते चले जाते हो। तुम और भटक जाते हो। जिसने तुम्हें हटाया है स्वयं से, तुम उसकी ही मान कर चलते हो। समाज तुम्हारा गुरु हो गया है और तुमने अपने अंतःकरण की आवाज को सुनना बिल्कुल बंद कर दिया है और समाज ने एक झूठा अंतःकरण तुम्हारे भीतर पैदा कर दिया है।''[15]

fu"d"kl

यों देखा जाय तो कबीर का चिंतन बहुआयामी है। उस चिंतन को किसी एक भाषा या भाव में बाँधकर नहीं देखा जा सकता है। जिस किसी भी विचारक ने कबीर की भाषा और उनके काव्य का चिंतन किया है उसको अपनी विचारधारा के अनुरूप कुछ न कुछ तत्त्व मिल ही जाता है। कबीर के चिंतन में आपको लोकपक्ष और लोकोत्तर पक्ष का दर्शन मिल जाएगा। जब आप कबीर को पढ़ना शुरू करेंगे तो आपको लगेगा कि कबीर का चिंतन अधिकतर जनवादी है, इसमें जिसमें जनवादी विचारधारा के बीज सन्निहित हैं। कहीं आपको बहुत सुलझा हुआ समाज दर्शक देखने को मिलेगा, कहीं बहुत उच्च कोटि का अध्ययनकर्ता अध्यात्मवेत्ता देखने को मिल जाएगा, कहीं घोर रहस्यवाद देखने को मिलेगा। वस्तुतः कबीर के चिंतन में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, भेदाभेदवाद, एकेश्वरवाद, सर्वेश्वरवाद आदि चितंन की सभी धाराएँ देखने को मिलेंगी इसलिए कबीर का चिंतन बहुआयामी है। कबीर के चिंतन पर शोध हुआ है, होता रहेगा और नए आयाम अपने नए रूप में हमारे सामने आते रहेंगे।

lanHkZ lwph

1. द्विवेदी हजारी प्रसाद, *कबीर,* प्रकाशक हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई।
2. वही।

3. चतुर्वेदी राजेश्वर प्रसाद, *कबीर ग्रंथावली,* टीकाकार।
4. *कबीर ग्रंथावली,* सम्पादक श्यामसुंदर दास, बी. ए. नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
5. वही।
6. वही।
7. वही।
8. द्विवेदी हजारी प्रसाद, *कबीर,* प्रकाशक हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई।
9. *कबीर ग्रंथावली,* संपादक श्यामसुंदर दास, बी. ए. नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
10. वही।
11. वही।
12. वही।
13. वही।
14. वही।
15. गूंगे केरी सरकरा, सातवां प्रवचन; जिन जागा तिन मानिक पाइया, से।

****